श्री अरविन्द और आर्यसमाज

मैं अभी आपके यज्ञ में सम्मिलित हुआ था। भारत के इस सुदूर कोने में ठेठ काश्मीरी लोगों को वेदमन्त्रों का उच्चारण करते हुए देख कर मुझे एक विशेष उल्लास हो रहा था। यह सब दयानन्द का प्रताप है। मेरे मन में यह भी आ रहा था कि आप वेदोच्चारण करने वाले लोगों को भारत के एक और महान् पुरुष का भी आशीर्वाद प्राप्त है। उसे बेशक आर्य समाजी लोग बहुत नहीं जानते पर असल में वह, वह पुरुष है जिसने कि स्वामी दयानन्द जी के बाद स्वामी दयानन्द द्वारा प्रवर्तित बातों को सबसे अधिक बढ़ावा दिया है। वह है भारत के एक अन्य महापुरुष श्री अरविन्द ; जिन्हें कि अब लोग एक महान योगी के रूप में कुछ-कुछ जानते हैं। आपने मुझे अपने आर्यसमाज में कुछ भाषण करने के लिए इतने आग्रह और प्रेम से निमन्त्रित किया है तो मेरे मन में यह विचार आया है कि मैं आज आपको आर्य समाज और श्री अरविन्द इसी विषय पर कुछ बोलूं।
आर्य समाज की सबसे मुख्य वस्तु है 'वेद'। यदि आर्यसमाज के कार्यक्रम में से वेद को हरा दिया जाये तो आर्यसमाज में कुछ भी कामकी चीज नहीं बच जायेगी। उस वेद के विषय में श्री अरविन्द ने जो कुछ किया है, जो कुछ कहा भी है- खेद है कि उसे बहुत कम लोग जानते हैं- परन्तु वह हमें अवश्य जानना चाहिये।

श्री अरविन्द ने योग साधना के लिए पांडिचेरी में पहुंच कर अपना नये प्रकार का जीवन स्वीकार करके जो एक मासिक पत्रिका इंग्लिश में निकालनी प्रारम्भ की थी, उसका नाम उन्होंने रखा था 'आर्य'। यद्यपि वह अंग्रेजी की पत्रिका थी तो भी उसके ऊपर 'आर्य' शब्द देवनागरी अक्षरों में अंकित होता था। वैसे तो यह भी हमारे लिए महत्व की बात है कि श्री अरविन्द ने उस पत्रिका का नाम 'आर्य' पसन्द किया। परन्तु इस पर तो मैं आगे कहूगा।

यहाँ तो यह कहना है कि उस पत्रिका के प्रारम्भ से ही श्री अरविन्द ने जो दो लेखमालायें प्रारम्भ की थीं, उनमें The Life Divine (दिव्य जीवन) की लेखमाला के अतिरिक्त दूसरी लेखमाला का नाम The Secret of the Veda अर्थात् 'वेद का रहस्य' थी। उनकी यह 'वेद का रहस्य' नामक लेखमाला बहुत ही अद्‌भुत है। उसमें उन्होंने यह भी बताया है कि वेद का असली प्रतिपाद्य विषय क्या है। अपने इस कथन की पुष्टि के तौर पर वेद के कुछ चुने हुए सूक्तों का अनुवाद भी उन्होंने 'आर्य' में प्रारम्भ किया था। उसका शीर्षक था Selected Hymns अर्थात् चुने हुए सूक्त। 'आर्य' पत्रिका 1914 से लेकर साढ़े छह वर्ष तक निकली है। इसमें प्रारम्भ में दो वर्षों तक यह लेखमाला चलती रही है ।

इन दोनों लेखमालाओं के पढ़ने पर मुझे यह लगा कि वेद के विषय में इतना बड़ा भारी कार्य हुआ है पर लोगों को उसका ज्ञान नहीं है। मेरी इच्छा हुई कि The Secret of the Veda और Selected Hymns इन दोनों का हिन्दी में अनुवाद किया जाये और श्री अरविन्द की अनुमति प्राप्त करके मैंने यह अनुवाद प्रारम्भ किया। इस लेखमाला के एक-एक अध्याय का अनुवाद पहले स्वाध्यायमण्डल औन्ध के मासिक पत्र 'वैदिक धर्म' में भी छपता रहा है। इस सब अनुवाद में मुझे लगभग छः वर्ष लगे हैं। श्री अरविन्द की अनुमति से ही हिन्दी का नाम 'वेदरहस्य' रखा गया है।

यह 'वेद रहस्य' पुस्तक तीन खण्डों में है। पहले खण्ड का नाम है 'वेद का प्रतिपाद्य विषय' यह 'The Secret of the Veda' लेखमाला का अनुवाद है। द्वितीय खण्ड है देवताओं का स्वरूप- यह Selected Hymns लेखमाला का अनुवाद है और तृतीय खण्ड का नाम है 'अग्नि-स्तुति' । इसमें श्री अरविन्द का किया हुआ ऋग्वेद के कुछ अग्नि देवता के सूक्तों का भाष्य है। इसके प्रारम्भ में श्री अरविन्द की लिखी हुई विस्तृत भूमिका है जो कि उन्होंने 'आर्य' पत्रिका में 1914 से 1916 तक लिखे अपने वेद सम्बन्धी लेखों के तीस वर्ष बाद जनवरी 1946 में वेद पर अपने विचार पुन : प्रकट करते हुए लिखी थी।

यह जानकर आपको प्रसन्नता होगी कि श्री अरविन्द की ये वेद सम्बन्धी रचनाएं- वेद रहस्य के तीनों खण्ड- इंग्लिश में भी पुस्तकाकार प्रकाशित होने से पहले हिन्दी में पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुकी हैं। 'वेद रहस्य' नामक श्री अरविन्द की इन रचनाओं में क्या लिखा हुआ है, वह तो आप लोगों को इनके पढ़ने से ही विदित होगा और मुझे विश्वास है कि आप इन्हें पढ़ेगे तो आनन्दित होंगे और बहुत प्रभावित होंगे। परन्तु संक्षेप में मैं कह सकता हूं कि पश्चिम के विद्वानों ने वेद के विषय में जो कुछ कहा है या जो सम्मति बनाई है, उसका सप्रमाण विद्वत्तापूर्ण और ठीक-ठीक उत्तर जैसा श्री अरविन्द ने दिया है वैसा किसी और ने नहीं दिया है। और यदि दुनिया में वेद का प्रचार होना है तो पश्चिम के विद्वानों पर वेद का जो प्रभाव पड़ना आवश्यक है, वह श्री अरविन्द के अनुसारी इन विचारों से ही होगा । इसमें श्री अरविन्द ने वेद के सब- प्राचीन और अर्वाचीन-भाष्यकारों की विद्वत्तापूर्ण समीक्षा भी की है। उदाहरण के लिए 'वेदरहस्य' पुस्तक के कुछ वचन निम्न हैं, जिनसे इसका कुछ आभास मिल सकेगा कि श्री अरविन्द के 'वेदरहस्य' में कैसी बातें हैं-
'(वेद) दिव्य वाणी है जो कंपन करती हुई असीम में से निकल कर मनुष्य के अन्त:श्रवण में पहुंची जिसने पहले से ही अपने आपको अपौरुषेय ज्ञान का पात्र बना रखा था।'

'अपने गूढ़ अर्थ में भी जैसे कि अपने साधारण अर्थ में यह (वेद) कर्मों की पुस्तक है, आभ्यन्तर और बाह्य यज्ञ की पुस्तक है ; यह है आत्मा की संग्राम और विजय की सूक्ति जबकि वह विचार और अनुभूति के उन स्तरों को खोज कर पा लेता है और उनमें आरोहण करता है जो कि भौतिक अथवा पाशविक मनुष्य से दुष्प्राप्य है।'

'यह (वेद) है मनुष्य की तरफ से उन दिव्य ज्योति, दिव्य शक्ति और दिव्य कृपाओं की स्तुति जो मर्त्य में कार्य करती है।'
'पूर्णता की प्राप्ति के लिए संघर्ष करने वाले आर्य के हाथ वह (वेदमन्त्र) एक शस्त्र का काम देता था।'

'दयानन्द ने ऋषियों के भाषा सम्बन्धी रहस्य का मूलसूत्र हमें पकड़ा दिया है और वैदिक धर्म के एक केन्द्रभूत विचार (अनेक देव एक परमदेव में आ जाते हैं) पर फिर से बल दिया है।'

'मैंने यह देखा कि वेद के मन्त्र, एक स्पष्ट और ठीक प्रकाश के साथ, मेरी अपनी आध्यात्मिक अनुभूतियों को प्रकाशित करते हैं।'

'इस परिणाम पर पहुंचने में, सौभाग्यवश मैंने जो सायण के भाष्य को पहले नहीं पड़ा था, उसने मेरी बहुत मदद की।'

'तब यह धर्म पुस्तक 'वेद' ऐसी प्रतीत होने लग गयी कि यह अत्यन्त बहुमूल्य विचार रूपी सुवर्ण की एक स्थिर रेखा को अपने अन्दर रखती है और आध्यात्मिक अनुभूति इसके अंश-अंश में चमकती हुई प्रवाहित हो रही है।'

'वेद के प्रतीकवाद का आधार यह है कि मनुष्य का जीवन एक यज्ञ है, एक यात्रा है, एक युद्ध क्षेत्र है।'

देहली के पं मनोहर जी वेदालंकार गुरुकुल के प्रसिद्ध विद्वान् और स्वाध्याय-शील स्नातक हैं। 'वेद रहस्य' के प्रकाशित होने के एकाध वर्ष बाद उन्होने जब इस पुस्तक को पढ़ा तो वे रह नहीं सके और उन्होंने मुझे एक पत्र लिखा जिसमें उन्होंने 'वेद रहस्य' की बड़ाई करते हुए लिखा कि मैंने अपने जीवन में वेद के विषय में इतनी विद्वत्तापूर्ण पुस्तक नहीं पढ़ी। श्री ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु को तो मैंने ही स्वयं 'वेद रहस्य' की तीनों प्रति भेंट की थी। उन्होंने अपने ढंग में मुझे लिखा था कि स्वामी दयानन्द के बाद अगर किसी ने वेद को समझा है, तो वे श्री अरविन्द हैं।

एक दूसरी बात की तरफ आपका ध्यान खींचता हूँ। 'आर्य' पत्रिका की जिस दूसरी प्रसिद्ध लेखमाला का मैंने उल्लेख किया है The Life Divine, उस लेखमाला के भी प्रत्येक अध्याय के प्रारम्भ में श्री अरविन्द ने कोई न कोई वेद या उपनिषद् का वचन उद्धृत किया है। सन् 1938 में जब श्री अरविन्द ने अपनी इस लेखमाला को पुस्तक रूप में प्रकाशित करने के लिए पुनरवलोकन किया तो श्री अरविन्दाश्रम के हम दो-तीन साधकों ने (जिनमें श्री अम्बालाल जी पुराणी, गुरुकुल कांगड़ी के स्नातक श्री वेदव्रत जी वेदालंकार तथा मैं थे) श्री अरविन्द से प्रार्थना की कि The Life Divine के पहले भाग में जैसे प्रत्येक अध्याय के प्रारम्भ में उपनिषद आदि के वचन हैं, वैसे ही आप दूसरे भाग में भी कर देवें। इस पर श्री अरविन्द ने कहा कि इसके लिए मुझे वेद, उपनिषद् आदि फिर खोजने पड़ेंगे, देखने पड़ेंगे इतना तो समय आजकल मेरे पास नहीं है। उस पर हमने उनके सामने यह प्रस्ताव रखा कि उन अध्यायों के लिए कुछ वेद उपनिषद् आदि के वचन हम खोजकर आपके सामने रख देंगे, उनमें से आप यथोचित चुनाव कर लेवें। यह प्रस्ताव श्री अरविन्द ने सहर्ष स्वीकार कर लिया और पाठक देखेंगे कि यद्यपि पहले The Life Divine के द्वितीय भाग में बहुत से अध्यायों पर कोई वचन नहीं थे पर अब पुस्तकाकार में छपी The Life Divine के दूसरे भाग में भी वेद आदि के वचन काफी मात्रा में हैं। जो लोग श्री अरविन्द द्वारा अनूदित वेदादि के वचनों में अभिरुचि रखते हैं उन्हें मैं यह सूचना भी देना चाहता हूं कि ऐसे वचनों की एक पृथक् पुस्तक भी छपी हुई है जिसका नाम है 'Sanskrit citations from the Life Divine'। इसके संकलन में श्री वेदव्रत जी वेदालंकार का बहुत हाथ था। मेरा विश्वास है श्री अरविन्द की The Life Divine पुस्तक का संसार में बहुत प्रचार होगा।

अभी अमेरिका ने The Life Divine का नया और सस्ता संस्करण निकाला है। ज्यो-ज्यों श्री अरविन्द की इस 'दिव्य जीवन' सम्बन्धी पुस्तक का प्रचार होगा तो साथ ही वेद का भी प्रचार होगा। The Life Divine के प्रत्येक अध्याय पर जो वेद मन्त्र आदि लिखे हुए हैं, यह कहा जा सकता है कि वह अध्याय उसी वेद वचन की व्याख्या है। दुनियां भरके विद्वानों के सम्मुख प्रस्तुत की हुई वेद वचनों की व्याख्या है।

श्री अरविन्द आश्रम में वेदों को किस महत्व की दृष्टि से देखा जाता है, इसका एक दष्टान्त देता हूँ। जब 1943 में देहली में श्री अरविन्द की अनुमति से श्री अरविन्द-निकेतन नाम से संस्था खोली गई और वहां

पर श्री अरविन्द के साहित्य के वाचनालय का प्रारम्भ किया गया तब कुछ समय बाद हमारे मन में आया कि इसी वाचनालय में कुछ और धार्मिक साहित्य भी रखा जाये तो कैसा हो ? पर इस विषय में जब श्री अरविन्द से पूछा गया तो उनका उत्तर श्री नलिनीकांत जी गुप्त मन्त्री द्वारा यह प्राप्त हुआ हम वहां वेद और उपनिषद् रख सकते हैं। इसके अतिरिक्त और कोई धार्मिक साहित्य रखा जाना उन्होंने पसन्द नहीं किया। इसी तरह श्री अरविन्द के दर्शन और जीवन प्रणाली को प्रकट करने के एक हिन्दी की पत्रिका के प्रकाशन का जब (दिसम्बर 1942 में) विचार निश्चित हुआ तो मैंने (क्योंकि इसका सम्पादन कार्य मुझे दिया गया था) श्री अरविन्द से उसका नाम क्या रखा जाये, यह पूछा। हमने पन्द्रह-सोलह नाम उन्हें लिखकर भेजे थे। उसमें से उन्होंने और सब नापसन्द करके 'अदिति' यह वैदिक नाम पसन्द किया। 'श्री अरविन्द सन्देश', 'दिव्य जीवन', 'पूर्ण योग, 'योग प्रदीप' इत्यादि प्रकार का कोई भी नाम उन्होंने पसन्द नहीं किया। यह 'अदिति' नाम भी वेदव्रत स्नातक का सुझाव था।

श्री अरविन्द ने दयानन्द पर एक लेख लिखा था। इसके दो भाग थे- (1) Dayanand, the man and his work (2) Dayanand and the Veda इस लेख में उन्होंने दयानन्द की जितनी प्रशंसा की है, वैसी प्रशंसा दयानन्द की किसी और ने नहीं की है। उसका प्रारम्भ ही इस प्रकार होता है कि हमारे सामने बहुत सी चोटियों वाली एक पर्वत माला है, उनमें से एक चोटी सबसे ऊंची और स्पष्ट सबसे जुदा दिखाई देती है, इस प्रकार की छाप दयानन्द की मेरे मन पर पड़ती है। और फिर महादेव गोविन्द रानाडे, विवेकानन्द तथा राममोहनराय आदि पुरुषों की तुलना में यह बतलाया है कि दयानन्द का भारत पर एक सुनिश्चित तथा दृष्टिगोचर होने वाला प्रभाव पड़ा है। एवं दयानन्द की विशेषता यह है कि वे भारतीय संस्कृति के आदिमूल वेद तक पहुंचे। यह लेख भी पुस्तक रूप में और हिन्दी में भी प्रकाशित हो चुका है। सो यह पुस्तक भी आप पढ़ सकते हैं, खूब पढ़ने लायक है।

बम्बई के एक आर्यसमाजी सज्जन श्री कापड़िया जी ने श्री अरविन्द का यह दयानन्द पर लेख अपनी तरफ से प्रकाशित कराया है और भूमिका श्री के०एम० मुंशी से लिखवायी है। उस भूमिका में मुंशी ने बहुत सुन्दर लिखा है कि यह भारत के एक महान् पुरुष की भारत के दूसरे महान् पुरुष पर सम्मति है। लोग जानते हैं कि मैं महात्मा गांधी का बहुत अधिक बल्कि कट्टर भक्त रहा हूँ और गांधी जी तथा उनके भक्तों के निकट संपर्क में रहा हूं। मैं बता सकता हूं कि मेरे कई गांधीभक्त मित्रों ने कुछ शिकायत के भाव से ही मुझे कई बार कहा है कि श्री अरविन्द ने दयानन्द की तो इतनी बढ़ाई की है, इतनी महिमा बताई है पर उन्होंने महात्मा गांधी की कभी ऐसी प्रशंसा नहीं की है। उनका यह कहना गलत नहीं है और इसका कुछ कारण है। अस्तु।

दयानन्द पर यह लेख (पुस्तक) श्री अरविन्द ने कैसे लिखा, इसकी कहानी लोगों को पता नहीं होगी। आचार्य रामदेव जी गुरुकुल कांगड़ी से अंग्रेजी की एक पत्रिका 'वैदिक मैगजीन' नाम से निकालते थे। उन्होंने 'वैदिक मैगजीन' के एक विशेष अंक के लिए श्री अरविन्द से प्रार्थना की कि वे दयानन्द पर एक लेख लिखने की कृपा करें। यद्यपि श्री अरविन्द इन दिनों बाहर के लिए बहुत कम लेख लिखते पर उन्होंने दयानन्द पर ये दोनों लेख लिखकर सहर्ष भेज दिये। गुरुकुल से ये लेख अंग्रेजी में पुस्तकाकार तब भी छपे थे। यहाँ पर इसी प्रसंग से सम्बन्ध रखने वाली एक घटना याद आती है, वह भी मैं आपको अवश्य सुनाऊंगा। उससे श्री अरविन्द की सत्यता कैसी थी, इसका एक दृष्टांत उपस्थित होगा। श्री अरविन्द की सब पुस्तकें जिस संस्था के द्वारा प्रकाशित होती थी वह कलकत्ता में थी, उसका नाम था

'आर्य पब्लिशिंग हाऊस'। शायद सन् 1939 में, जब आर्य पब्लिशिग हाऊस वालों की इच्छा हुई कि श्री अरविन्द का दयानन्द पर जो लेख है, उसे भी वे क्यों न प्रकाशित करें तो आर्य पब्लिशिंग हाऊस के प्रबन्धक श्री तारापाद जी ने श्री अरविन्द से इस विषय में पूछा। श्री अरविन्द ने उत्तर दिया कि 'वह लेख तो मैने गुरुकुल कांगड़ी की 'वैदिक मैगजीन' के लिए लिखा था। यह तो उनका है। उनसे बिना पूछे तुम नहीं छाप सकते। छापना चाहो तो उनसे पूछो।' इस पर तारापाद जी मुझमे मिले और सब बात सुनाई। तब मैंने गुरुकुल से तथा आर्य प्रतिनिधि सभा से, बाकायदा अनुमति लिखित रूप में मंगाई, तब वह दयानन्द पर लेख आर्य पब्लिशिंग हाऊस वालों ने अपने प्रकाशनों में छापा।

दयानन्द पर लिखे गये इस लेख का हिन्दी अनुवाद मैंने किया है और वह श्री अरविन्दाश्रम की तरफ से प्रकाशित हुआ है। इसे प्रामाणिक हिन्दी अनुवाद कहा जा सकता है क्योंकि इसका अनुवाद करने में मुझे दो स्थलों पर स्वयं श्री अरविन्द से कुछ पूछना पड़ा था नहीं तो अनुवाद ठीक न होता। पर मैं इसके नाम के विषय में एक बात सुनाना चाहता हूं। श्री अरविन्द ने इस लेख का शीर्षक 'दयानन्द' यही रखा था। मेरा अनुवाद जब छप रहा था तब मेरे एक मित्र कृष्णशम्भु जी ने मुझे यह कहा कि पुस्तिका का नाम केवल 'दयानन्द' तो अच्छा नहीं लगता। उनके मन कुछ ऐसा भाव आया कि कहीं आर्यसमाजी लोग ऐसा न समझें कि श्री अरविन्द ने दयानन्द के साथ ऋषि या स्वामी कुछ भी नहीं लगाया है। उनका विचार था कि ऋषि नहीं तो स्वामी शब्द तो अवश्य लगाना चाहिये, नहीं तो अच्छा नहीं माना जायेगा। तो मैंने यह बात भी श्री अरविन्द से पुछवायी। उन्होंने जो उत्तर दिया, वह सुनने लायक है। श्री अरविन्द ने कहा 'ऐ! स्वामी दयानन्द! स्वामी तो बहुतेरे फिरते हैं। वे तो दयानन्द थे दयानन्द।' उनके कहने का भाव मानों यह था कि दयानन्द के आगे स्वामी लगाने से चाहे स्वामी शब्द की प्रतिष्ठा बढ़ती हो पर दयानन्द की प्रतिष्ठा नहीं बढ़ती है। क्योंकि एक दृष्टान्त देते हुए वे आगे बोले 'दयानन्द के आगे स्वामी लगाना तो ऐसा होगा जैसे कि शेक्सपियर के आगे मिस्टर लगाना- मि. शेक्सपियर।'

श्री अरविन्द के दयानन्द पर लिखे इस लेख में एक वाक्य है जिस पर स्नातक वेदव्रत जी ने मेरा ध्यान खींचा था। वे यूं कहा करते थे कि यह श्री अरविन्द का आर्यसमाज को आशीर्वाद है। वह वाक्य निम्न प्रकार है-
'और यह उचित ही है कि उस आचार्य (दयानन्द) की आत्मा अपने अनुयायियों पर अपना चिह्न, अपनी निशानी छोड़ जाये, और भारत में किसी स्थान पर ऐसी संस्था विद्यमान हो जिसके बारे में कहा जा सके कि जब कभी कोई ऐसा काम दिखाई देगा जो आवश्यक हो और उचित हो तो उसे करने के लिए मनुष्य आगे आयेंगे, साधन मिलेंगे और वह काम अवश्य पूरा होगा।'

इसका अर्थ यह हुआ कि आर्यसमाज में दयानन्द से आई हुई शक्ति इतनी अन्तर्गभित है कि जब कभी आर्यसमाज पर कठिनाई आयेगी या कोई कर्त्तव्य आवेगा तो वह उसे पार कर सकेगा, पूरा कर सकेगा। जब हैदराबाद में आर्यसमाज का सत्याग्रह चल रहा था तब भी श्री अरविन्द के इस वचन की तरफ हमारा ध्यान गया था। यह आप लोगों को विदित होगा कि हैदराबाद के उस समय के प्रधानमन्त्री श्री अकबर हैदरी श्री अरविन्दाश्रम में आया करते थे। हैदराबाद के एक साधक ने आश्रम में मुझे सुनाया कि हैदराबाद में लोग कहते हैं कि यह अकबर हैदरी पांडिचेरी में श्री अरविन्द के दर्शन करने गया और वहाँ से लौटकर आर्यसमाज की सब मांगें स्वीकार कर ली और आर्यसमाज के सब कैदी छोड़ दिए।

मुझे इस बात का गर्व है कि मैं जन्म का आर्यसमाजी हं अर्थात् मेरे पूज्य पिताजी (जिन्होंने अभी चार वर्ष पूर्व 1953 में, अपनी 91 वर्ष की आयु में, 'वैदिक विनय' के मन्त्र पढ़ते हुए अपना शरीर छोड़ा है) दृढ़ आर्यसमाजी थे। दूसरे शब्दों में मैं कट्टर आर्यसमाजी की सन्तान हूं। वे मेरे पूज्य पिताजी एक समय अखिल भारतीय शुद्धि सभा के मन्त्री रहे थे। वे गौरव के साथ सुनाया करते थे कि संवत् 1961-62 में (सन् 1905 में) काशी की कांग्रेस के अवसर पर उन्होंने श्री अरविन्द घोष जी को शुद्धि सभा का सभासद् बनाया था। उनके हस्ताक्षर अपने रजिस्टर में कराये थे। श्यामाचरण जी आदि छ: अन्य बंगाली महानुभावों को भी सदस्य बनाया। कइयों को यह विचित्र लगेगा कि अरविन्द घोष जैसा राष्ट्रीय नेता शुद्धि सभा का सदस्य बने । पर अरविन्द के लिए यह कुछ भी विचित्र नहीं था। वे सहर्ष शुद्धि सभा के सदस्य बने थे और इस कार्य द्वारा भी राष्ट्रसेवा या परमात्मसेवा की थी।

श्री अरविन्द को 'आर्य' शब्द बहुत प्रिय है और उसे वे हमारे साहित्य में बहुत ऊंचे अर्थ का अभिव्यंजक मानते हैं। इसीलिये उन्होंने अपने अंग्रेजी पत्र का नाम 'आर्य' रखा था जिसका कि फ्रेंच संस्करण भी निकला करता था। उन दिनों जब उनसे पूछा गया कि आपने अपने मासिक पत्र का नाम 'आर्य' क्यों रखा है तो उसके उत्तर में 'आर्य' पत्रिका में ही उन्होंने विस्तार से आर्य शब्द का अर्थ समझाया था। उस सब को यहां उद्धृत करना तो कठिन है पर उसका कुछ अंश निम्न प्रकार है-
'वेद में जहाँ आर्यप्रजाओं का उल्लेख आया है वहाँ वे लोग हैं जिन्होंने संस्कृति की, आत्मसाधना की, एक अन्तर और वाह्य अभ्यास की, आदर्श भाव एवं अभीप्षा की विशिष्ट पद्धति को अपनाया था...।'
पीछे जाकर 'आर्य' शब्द एक विशिष्ट प्रकार के नैतिक और सामाजिक आदर्श को- अर्थात् सुनियन्त्रित जीवन, दृढ़ता, शिष्टता, शालीनता, सत्य सरल-व्यवहार, साहस, भद्रता, पवित्रता, कारुणिकता, दुर्बलों की रक्षा, उदारता, सामाजिक कर्तव्यों का पालन, ज्ञान पिपासा, विद्वानों और ज्ञानियों का आदर- के आदर्श को- अभिव्यक्त करने वाला हो गया था...। मानवीय भाषा में और कोई दूसरा शब्द ऐसा नहीं है जिसका इतिहास इससे उत्कृष्टतर या उज्ज्वलतर हो...।'

'वह जो चुनाव करता है, जो भगवान् के, दिव्यता के, पर्वत पर एक स्तर से दूसरे स्तर पर आरोहण करता हुआ चढ़ना चाहता है, जो किसी से डरता नहीं, जो किसी विघ्नबाधा या पराजय से विचलित नहीं होता और साथ ही जो किसी विशालता, उच्चता व महानता से झिझकता भी नहीं...। वह आर्य है, वही दिव्य योद्धा, विजेता, महान् अभिजात, उत्तम और गीतोक्त श्रेष्ठ पुरुष है।'
'अपने आन्तरिक तथा मूलभूत अर्थ में 'आर्य' शब्द का अभिप्राय है प्रयास करना, ऊर्ध्वगति करना, विजय लाभ करना। आर्य वह है जो सतत प्रयत्नशील है और जो कुछ भी उसके अन्दर या बाहर ऐसा है जो मानवीय प्रगति में बाधक रूप से आ उपस्थित होता है, उस पर वह अपनी विजय स्थापित करता है। आत्मविजय ही उसकी प्रकृति का पहला नियम है। वह अपने शरीर पर और इस पृथ्वी पर प्रभुत्व स्थापित करता है और एक साधारण मनुष्य की तरह जड़ता, निष्क्रियता, निर्जीव दैनिकचर्या, तमोग्रस्तता में पड़े रहना स्वीकार नहीं करता।

वह जीवन और उसकी शक्तियों पर विजय प्राप्त करता है और प्राणिक लालसाओं व इच्छाओं द्वारा शासित होने और राजसिक आवेगों का दास बने रहने से इन्कार करता है। वह अपने मन और उसके अभ्यासों को अतिक्रान्त कर जाता है। वह अज्ञान, वंशानुगत पूर्वग्रहों, प्रचलित रूढ़ विचारों और रोचक सम्मतियों के कठोर आवरण में आबद्ध नहीं रहता प्रत्युत् वह जानता होता है कि खोज और चुनाव कैसे

करना चाहिये और अपने संकल्प में अडिग और सशक्त रहते हुए भी बुद्धि में विशाल और सुनष्य कैसे रहा जा सकता है। क्योंकि वह प्रत्येक चीज में सत्य को ही खोजता है, उस चीज को खोजता है जो ठीक और सही है, जो उच्च और निर्बन्ध है।'

'आत्मपरिपूर्णता ही उसके आत्मविजय का उद्देश्य है। इसलिए जो कुछ भी वह विजित करता है उसे वह विनष्ट नहीं करता बल्कि उसे वह उदात्तरूप देता है और उसे उसकी परिपूर्ण प्रदान करता है।

'आर्य एक कर्मण्य व्यक्ति होता है, एक योद्धा होता है। यह मानसिक या शारीरिक श्रम करने में कोई कसर उठा नहीं रखता चाहे वह उस परम की खोज में लगा हो, चाहे उसकी सेवा में रत हो। किसी कठिनाई से बच भागना वह पसन्द नहीं करता, न ही वह श्रमक्लान्त हो कार्य को बन्द कर देना पसन्द करता है। प्रत्युत् वह अपने अन्दर और बाहर आत्मसाम्राज्य की स्थापना के लिए संघर्ष करता है।'

'वेद रहस्य' के द्वितीय खन्ड में अग्निदेवता का स्वरूप बतलाते हुए ऋक् १/७७/३ का अर्थ स्पष्ट करते हुए उन्होंने बड़ा सुन्दर कहा है- 'वह क्या आर्य है जो दिव्यसंकल्प से अर्थात् अग्नि से रहित है, उस अग्नि (संकल्प) से जो श्रम को तथा युद्ध को स्वीकार करता है, कार्य करता और जीतता है, कष्ट सहन करता और विजय प्राप्त करता है ?'

गुरुकुल के स्नातक पं० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति जब दक्षिण भारत में आर्यसमाज के प्रचार का कार्य करते थे, तब का मुझे स्मरण है कि उन्होंने जनगणना के एक अवसर पर एक पैम्फलेट छपवाया था जिसमें श्री अरविन्द की की हुई आर्य की यही व्याख्या दी हुई थी और लोगों से अपील की गई थी कि वे जनगणना में अपने आपको हिन्दू लिखाने की जगह 'आर्य' लिखायें। श्री अरविन्द की एक और प्रसिद्ध लेखमाला है जो 'आर्य' में प्रकाशित हुई थी। उसका नाम था 'A defence of Indian Culture'। इसका भी 'अदिति' में अनुवाद प्रकाशित हो चुका है। कुछ यूरोपियन लोगों ने भारतीय संस्कृति पर जो आक्षेप किये थे, उनके उत्तर में यह लेखमाला लिखी गई है। इसमें भी भारतीय संस्कृति का मूल स्रोत वेद को माना है। इस लेखमाला के वेद सम्बन्धी वचनों का अनुवाद भी मैंने एक बार अहमदाबाद के गुजराती स्वाध्याय मण्डल के लिए किया था। जैसे श्री अरविन्द भारतीय संस्कृति की मुख्य वस्तु आध्यात्मिकता को मानते हैं (इस लेखमाला को हृदयंगम करने पर यह आपको अच्छी तरह पता लगेगा) वैसे ही वे वेद का असली तात्पर्य भी उसके आध्यात्मिक अर्थ में ही मानते हैं।

वेद में श्री अरविन्द की रुचि कैसे हुई, इसका वर्णन स्वयं उन्होंने 'वेद रहस्य' पुस्तक में किया है। उन्होंने उसके पांचवें अध्याय में, जिसका शीर्षक है 'आध्यात्मिकवाद के आधार', लिखा है कि एक वार मैंने ध्यान में तीन देवियां देखी, उनके नाम इड़ा, सरस्वती और सरमा आये। तब तक मैंने वेद का स्वाध्याय नहीं किया था। उन देवताओं की पौराणिक विचार के अनुसार मैंने कुछ व्याख्या की। 'सरस्वती' को विद्या की देवी तथा 'इड़ा' को चन्द्रवंश की माता मान लिया था। पर असल में ये कुछ और ही थीं। वेद में वर्णित ये तीन देवियां- 'इडा, सरस्वती तथा सरमा- असल में क्रमश : स्वत:प्रकाश (Revelation), अन्त:प्रेरणा (Inspiration) तथा अन्तर्ज्ञान (Intuition) की द्योतक हैं, दिव्य दृष्टि, दिव्यश्रुति तथा दिव्यस्मृति की देविया हैं। ऐसे ही दृष्टान्तों को देखकर श्री अरविन्द ने लिखा है कि 'मैंने यह देखा कि वेदमन्त्र, एक स्पष्ट और ठीक प्रकाश के साथ, मेरी अपनी आध्यात्मिक अनुभूतियों को प्रकाशित करते हैं।' अर्थात् श्री

अरविन्द को अपनी योग साधना में होने वाली आध्यात्मिक अनुभूतियों की ठीक व्याख्या वेद में मिली। इससे पहले, श्री अरविन्द ने लिखा है, वे भी पढ़े लिखे भारतीयों की तरह पश्चिमी लोगों के विचार के अनुसार ही वेद को बहुत कुछ जंगलीपन की बातों की पुस्तक मानते थे तथा उपनिषदों को ही भारतीय विचार तथा धर्म का प्राचीन स्रोत, सच्चा वेद, समझते थे। अर्थात् योग-साधना ने, आध्यात्मिक अनुभूतियों ने उनको वेद का असली स्वरूप दर्शाया।

तो दयानन्द और श्री अरविन्द में निम्न चार बातों में समानता देखी जा सकती है :-
1. दोनों ने ही भारतीय संस्कृति का मूलस्रोत वेद को माना है- वे खोज में वेद तक गये हैं और वेद को पहचाना है- उपनिषदों पर ही नहीं अटक गये हैं।
2. दोनों ने ही 'योग' का आश्रय लिया।
3. दोनों राष्ट्रीयता के उपासक थे। यद्यपि उनकी राष्ट्रीयता संकुचित नहीं थी।
4. दोनों आध्यात्मिकता को सर्वोपरि मानते थे।

जब भारतीय संस्कृति की मुख्य वस्तु आध्यात्मिकता है और वेद का भी असली तात्पर्य आध्यात्मिक अर्थ में है, और योग तो आध्यात्मिकता के ही विकास की क्रियात्मिका पद्धति का नाम कहा जा सकता है तथा भारत की राष्ट्रीयता का भी लक्ष्य विश्व में आध्यात्मिक अभिव्यक्ति है तो ये चारों बातें भी 'आध्यात्मिकता' में समा जाती हैं।

तो जगत् को आध्यात्मिक सन्देश देना ही आर्यसमाज का लक्ष्य हो जाता है- वेद के प्रचारक तथा भारतीय संस्कृति के उद्धारक आर्यसमाज का यही लक्ष्य हो जाता है। बहुत से लोग सचाई से मानते हैं कि आर्यसमाज का कार्यकाल अब समाप्त हो चुका है। उसने जो करना था, कर लिया अब उसकी आवश्यकता नहीं है। यह ठीक है कि व्यक्तियों की तरह समाजों, संगठनों तथा संस्थाओं की भी एक आयु होती है। पर मैं यह नहीं मानता कि दयानन्द ने जिस उद्देश्य से आर्यसमाज की स्थापना की थी वह पूरा हो चुका। मेरी समझ में तो भारत के स्वाधीन हो जाने से अभी ही वह समय आया है जबकि आर्यसमाज कार्य वास्तविक अर्थों में प्रारम्भ हो सकता है। पर यह तभी है जबकि आर्यसमाज अपने को मूलत: एक आध्यात्मिक संस्था बना ले। अभी तक आर्यसमाज का मुख्य रूप एक समाज सुधारक संस्था का बना रहा है। पर यह पर्याप्त नहीं है। यदि यही रूप रहना है तो बेशक आर्यसमाज की आयु पूर्ण हो रही है। परन्तु यह आवश्यक नहीं है। यदि विश्व की, जगत् की किसी सच्ची आवश्यकता को आर्यसमाज पूर्ण कर सकता है तो आर्यसमाज को अभी बहुत कुछ करना है, उसका कार्य शेष है। और उस कार्य के लिये आर्यसमाज को अपने पथप्रदर्शक के रूप में श्री अरविन्द को अपना लेना बहुत उपयोगी हो सकता है। जो हो, हमारा विश्वास है कि भारत ने फिर 'जगद्गुरु' बनना है। भारत में आध्यात्मिकता जागेगी- वह आध्यात्मिकता नहीं जो कि इस शब्द का आम अर्थ माना जाने लगा है, परन्तु जैसा कि श्री अरविन्द की शिक्षाओं में कहा गया है एक सक्रिय और विकसनशील आध्यात्मिकता- वह आध्यात्मिकता भारत में जागेगी और सब जगत् को प्रभावित करेगी। उसमें भागीदार होने के लिए हमें तैयार हो जाना चाहिए। मेरा यह भी विश्वास है कि यह काश्मीर- भारत का शीर्ष स्थानीय यह काश्मीर प्रदेश- उस आध्यात्मिक शक्ति की जागृति का शीघ्र ही लीला केंद्र बनेगा। भारत में युग-युग में पुष्ट होती आ रही जिस आध्यात्मिकता को श्री अरविन्द ने वर्तमान काल में एक सजीव रूप दिया है- जिस आध्यात्मिकता की मुख्य वस्तु मानस से ऊपर की एक अतिमानस शक्ति- जिसे उपनिषद् में 'विज्ञान'

कहा है और जिसे वेदों में 'ऋतचित्' कहा है- के द्वारा स्थूल जगत्, जड़ जगत् तक जो परिवर्तित करना, रूपान्तरित कर देना है, उस आध्यात्मिकता की क्रीड़ा काश्मीर में भी होगी। और कश्मीर की शैववाद की प्राचीन परम्परा श्री अरविन्द प्रतिपादित आध्यात्मिकता के बहुत अनुकूल भी है। इसलिए हमें अन्य सब तुच्छ बातों को छोड़कर इस महान् आध्यात्मिकता के लिये तैयार होना है। आपका यह आर्यसमाज, परमेश्वर करे, उस आध्यात्मिकता का काश्मीर में स्वागत करने वाला बने जिसमें पुनः जागृत होकर इस भारत देश ने एक कोने से दूसरे कोने तक हिल जाना है।

टिप्पणी-

1. श्री अरविन्द ने योगसाधना का प्रारम्भ पहिले पहल देशसेवा के लिए शक्ति प्राप्त करने के उद्देश्य से ही किया था। दयानन्द ने भी अपने कार्य में सफलता न मिलती देखकर हिमालय में जाकर तप किया था फिर योग द्वारा नवजीवन प्राप्त करके ही नये उत्साह से उठे थे- पाखण्डखंडिनी पताका उठायी थी।

2. काश्मीर की कर्णनगर आर्यसमाज में दिया गया यह भाषण 'वेदसुधा' के फरवरी 1968 अंक में छपा था।

प्रस्तुति- प्रियांशु सेठ